# हाडो शतक

( राजस्थानी काव्य )

रचयिता
नाथूसिंह महियारिया

सम्पादक
महेन्द्रसिंह
सुरेन्द्रसिंह महियारिया

1980 मूल्य पन्द्रह रुपये

राजस्थानी ग्रन्थागार
त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर.

[illegible]

## स्व० श्री फूलकुँवरबाई आशियाणीजी



आश्याणी सल्हा दिये, आश्याणी घर काज।
आश्याणी सारा मही, आश्याणी सरताज।।

# समर्पण

पैहर्‌या मुखमल पाड़चा
हिवड़े नवसर हार।
फूलां तन अधको फवै
शतक तणो सिणगार।।

रचिवर री धमपत्नी

स्व० श्री फूलकुंवरबाई आशियाणीजी



आश्याणी सल्हा दिये आश्याणी घर काज ।

आश्याणी सारा मही आश्याणी सरताज ।।

# निवेदन

वीरांगना हाडी का जीवन-चरित अत्यन्त अद्‌भुत रहा है। उसकी शौर्य्यपूर्ण गाथा राजस्थान की रण-भूमि के कण-कण से मानो सुनाई देती है। जब हम उसे कहते हैं या सुनते हैं तब हमारा मन एक विचित्र सम्मोहन में डूबने लगता है। हाडी का यह दिव्य जीवन-चरित भारतीय जन-मानस में समाया हुआ है। उसने अनेक कवि-कोविदों को मुग्ध किया एव लिखने की प्रेरणा दी है। संक्षेप में यह कथा-सूत्र इस प्रकार है :–

मेवाड़ के ठिकानों में से एक ठिकाना था–सलूम्बर। वहाँ का रावत एक चूँडावत सरदार था। हाडी उसकी पत्नी थी। उनके समय में मेवाड़ पर महाराणा राजसिंह, प्रथम (वि० सं० १७०६–१७३७) शासन कर रहे थे। तब दिल्ली का साम्राज्य औरंगजेब के हाथों में था।

उस समय एक विचित्र घटना घटी। चूँडावत सरदार हाडी से विवाह कर लौटा ही था कि उसे महाराणा राजसिंह की ओर से युद्धार्थ निमंत्रण मिला। युद्ध औरंगजेब के विरुद्ध करना था। यह युद्ध-अवसर इसलिए उपस्थित हुआ था कि औरंगजेब रूप-

नगर के राठौड़ राजा रूपसिंह की पुत्री चारुमती, जो रूप और शील में अद्वितीय थी, से विवाह करना चाहता था। राजकुमारी ने तब स्वधर्म की रक्षा के लिए और कोई उपाय न देख अपने को धर्म रक्षक महाराणा राजसिंह के अर्पित कर दिया था। महाराणा शरणागत की रक्षा क्यों नहीं करते ? यद्यपि उन्हें मालूम था कि इस राजकुमारी की रक्षा का अर्थ औरंगजेब की भीषण सैन्य शक्ति से टकराना है, तथापि वे तैयार हो गये थे।

सोचा गया कि एक ओर रूपनगर की उस क्षत्रिय-कुमारी से विवाह करने महाराणा पहुँचेंगे तथा दूसरी ओर मेवाड़ की सेना रूपनगर आते हुए औरंगजेब को रोकेगी।

सेना तैयार हुई। उसका नेतृत्व सलूम्बर के रावत चूँडावत को मिला। विवाह के तुरन्त बाद ही रावत और हाड़ी के जीवन में यह घटना घटी थी। उनके विवाह-कंगन भी खुल नहीं पाये थे। किन्तु क्षत्रिय धर्म के निर्वाह का प्रश्न था। रावत रुका नहीं। युद्ध के लिए वह तुरन्त उद्यत हो गया।

युद्ध में प्रस्थान करते समय उसने अपनी नवविवाहिता हाड़ी से सहनाणी स्वरूप कोई वस्तु चाही। शौर्य और पराक्रम में हाड़ी भी अपने पति से कम नहीं थी। उसने अपना मस्तक अपने ही हाथों से तलवार से विच्छिन्न कर उसे थाल में रखा और सहनाणी स्वरूप अपने पति के पास पहुँचा दिया। उस विचित्र

सहनाणी को देखकर रावत विस्मय मे डूब गया। उसका शौर्य्य दुगुना भडक उठा। वह उस मस्तक को अपने गले मे धारण कर समर-भूमि मे पहुँचा, जहाँ उसने औरगजेब की सेना को थर्रा दिया। वह तब तक लडता रहा, जब तक महाराणा रूपनगर की क्षत्रिय-कुमारी चारुमती से विवाह कर उदयपुर सकुशल नही गये। अन्त मे वह धराशायी हो गया और औरगजेब को रीते हाथो दिल्ली लौटना पडा।

प्रस्तुत काव्य की आधार भूमि यही जन-वाही कथानक है। "वीर सतसई" की रचना करते समय हाडी के इस दिव्य चरित पर मेरा ध्यान गया था और तभी से इस सम्बन्ध मे मैं यदा-कदा लिखने लगा। कभी एक दोहा बनता तो कभी दो। इस प्रकार धीरे-धीरे यह सब दोहे तैयार हुए है।

कथनीय है कि इस रचना मे मुझे सुदीर्घ समय देना पडा है। इसकी रचना करते समय न केवल "वीर सतसई' का प्रणयन-प्रकाशन हुआ, प्रत्युत इस बीच "गाधी शतक" एव 'काश्मीर शतक" लिखे जाकर प्रकाशित भी हुए। कह नही सकता कि हाडी शतक की रचना मे इतना समय क्यो लगा? किन्तु यह तो मुझे ज्ञात अवश्य है कि इसके प्रत्येक दोहे ने, जब मैं इसकी रचना करता था, मेरे हृदय को काफी झकझोरा है।

अस्तु यह मेरी प्रकाशित काव्य-कृतियो मे चौथी रचना है। "वीर सतसई", "गाधी-शतक' एव "काश्मीर शतक' को

काव्य-मर्मज्ञो ने जो आदर दिया है, उसी से प्रेरणा पाकर एक और प्रयास आपके समक्ष लाने का उद्योग कर पाया हूँ। आशा है, विज्ञ पाठक मेरे उत्साह का और सवर्धन करेंगे।

यहां मुझे एक बात और कहनी है। "वीर सतसई" को मैंने अपने पूज्य पिता श्री ठा० केसरीसिहजी की स्मृति मे समर्पित किया था। यह समर्पण करते समय मेरे कवि-हृदय ने अभिलाषा की थी कि जब "हाडी शतक" की रचना सम्पूर्ण होगी तब उसे मैं अपनी धर्मपत्नी स्व० आशियाणीजी फूलकुँवरबाई की पुण्य स्मृति मे समर्पित करूँगा; जैसाकि 'सतसई' के कवि-परिचय-भाग मे सकेत भी दिया गया है। कहना न होगा कि आज यह अभिलाषा पूरी होती देख मेरा हृदय अपार हर्ष का अनुभव कर रहा है।

जिन महानुभावो ने समय-समय पर आवश्यकतानुसार मुझे पूर्ण योग दिया है उनके प्रति आभार प्रकट करना भी मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। उदयपुर के महाराणा श्री भगवत सिंहजी ने राजस्थानी साहित्य के प्रति सद्भावनापूर्ण सहयोग प्रदान कर मुझे प्रोत्साहित किया। उनका मै विशेष आभारी हूँ। वेदला राव साहब श्रीमान् मनोहरसिंहजी के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करना अपना परम कर्तव्य मानता हूँ, जो मुझे काव्य-रचना के लिए सदा से प्रोत्साहित करते रहे है। एवमेव डॉ० मोतीलालजी मेनारिया का भी मैं हृदय से आभारी

हूँ, जिन्होंने इस कृति की प्रस्तावना लिखकर मेरे प्रति अपने सहज स्नेह को दर्शाया है। मेरे पौत्र महेन्द्रसिंह, सुरेन्द्रसिंह महियारिया ने इस पुस्तक का सम्पादन कर अपना कर्तव्य किया, जिनके सुआग्रह से यह कृति प्रकाशित हो सकी है। एतदर्थ वे भी धन्यवाद के पात्र है।

दत्तात्रय महियारिया

सुन्दर-सदन, लालघाट, उदयपुर
जन्माष्टमी, वि. सं. २०२६

# प्रस्तावना

राजस्थान के वर्तमान कवियो में ठाकुर नाथूसिहजी महियारिया का परम आदरणीय स्थान है। ये राजस्थानी भाषा के वहुत उत्तम कोटि के कवि हैं। इनके लिखे तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है :—(१) वीर सतसई, (२) गाधी शतक और (३) काश्मीर शतक। ये तीनों ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होने फुटकर कवितायें भी प्रचुर परिमाण मे लिखी हैं।

यह "हाडी शतक" इनकी चौथी रचना है। इसमे हाडी राणी के वलिदान की गाथा है, जो लोक-कहानी पर आधारित है। इतिहास की दृष्टि से यह कहानी कहाँ तक ठीक है, कहना कठिन है। इसकी आवश्यकता भी नही है। कारण, कवि ने इसमें हाडी राणी का इतिवृत्त प्रस्तुत नही किया है, केवल उसके व्यक्तित्व को चमकाया है।

"हाडी शतक" में राजस्थानी भाषा के १३१ दोहे है। इनकी भाषा वहुत सरल एवं विपयानुकूल है। इनमे कही भी कृत्रिमता व शब्दों की खीचतान नही है। अपने मनोभावो को व्यक्त करने

के लिए कवि ने जिन शब्दो को उपयुक्त समझा उन्ही का उसने नि सकोच होकर प्रयोग किया है और इसमे उसको पर्याप्त सफलता मिली है। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर ठीक बैठा है जिस प्रकार एक नगीना अगूठी मे बैठता है।

ठाकुर नाथूसिहजी की कविता के दो प्रधान गुण हैं–भाव की मौलिकता और वर्णन की चित्रात्मकता। ये दोनों गुण इस पुस्तक मे स्थान-स्थान पर देखने में आते हैं। मार्मिकता इनकी कविता का तीसरा गुण है। इस पुस्तक मे अनेक ऐसे दोहे हैं जिनको पढते-पढते पाठक की आँखो मे आँसू आ जाते है .–

सत री सहनाणी चही, समर सळू वर धीस।
चूडामण मेली सिया, इण घण मेल्यो सीस ।।५३।।

सीस पुगायो पिउ कने, धायो रगता कीच।
रहियो पण बहियो नही, काजळ नैणां बीच ।।५६।।

पुस्तक छोटी है, पर बहुत अच्छी है। इसमे शौर्य का वातावरण है। शौर्य्य के प्रति आस्था है। इसके पढने से सहृदय काव्य-प्रेमी पाठको का यथेष्ट मनोरजन होगा, इसमे मुझे तनिक भी सन्देह नही है।

उदयपुर (राजस्थान)
७-११-६६

(डॉ०) मोतीलाल मेनारिया

# वीरांगना हाडी



आ मूहँगो होतो नहीं धन होतो मम पास ।
लिखता सुवरण आखरा [illegible] रो निवास ॥

# हाडी शतक

चरणी वन्दना

शकती करणी आप री,
शकती अपरंपार ।
ते नरसिंघ उपावियो,
वाहण रे विसतार ॥

शब्दार्थ – शकती=शक्ति, शक्तिस्वरूपा, करणी=चारणों की आराध्या देवी, ते=तुमने, नरसिंघ=नृसिंह, नृसिंहावतार, उपावियो= उत्पन्न किया, वाहण=वाहन, सिंह, विसतार=विस्तार, समृद्धि ।

भावार्थ – हे शक्तिस्वरूपा करणी ! आपने अपने वाहन के विस्तार के लिए नृसिंह को उत्पन्न किया, आपकी शक्ति का कोई पार नहीं है, मैं उस शक्ति का वर्णन किस प्रकार करूँ ?

अवरंग रंग फीको हुवो,
हुई हिंदवाण अनूप ।
हाडी सिर दे राखियो,
रूपनगढ रो रूप ॥ १ ॥

शब्दार्थ – अवरंग=औरंगजेब, रंग=कान्ति, हिंदवाण=हिंदुस्तान, रूपनगढ=रूपनगर, किशनगढ़ ।

भावार्थ – हाडी के अपूर्व बलिदान का चमत्कार बताते हुए कवि कहता है कि उस वीरांगना ने अपने ही हाथों अपना मस्तक काटकर जब रूपनगर के सौन्दर्य की रक्षा की तब एक ओर उस अबला के बल को देखकर औरंगजेब की कान्ति फीकी पड गई और दूसरी तरफ यह हिन्दुस्तान उस विस्मयकारी त्याग के कारण समूचे विश्व मे दीप्तिमान् हो उठा ।

इण पिउ पहली सिर दियो,
आय सळूंबर थान ।
रण चाढ्यो सिर राण रे,
हाडो मेरु समान ॥ २ ॥

शब्दार्थ – पिउ=पति, सलुम्बर का रावत रण=ऋण, चाढ्यो=चढाया, राण=महाराणा राजसिंह (प्रथम) ।

भावार्थ :– सलूम्बर ठिकाने में आकर हाडी ने अपने पति से भी पहले अपना मस्तक दे दिया। कवि कहता है कि इस प्रकार उस वीर-पत्नी ने महाराणा राजसिंह के सिर सुमेरु पर्वत के समान बहुत बड़ा ऋण चढा दिया। महाराणा उस ऋण से कैसे मुक्त हो सकते हैं ?

रावत रो सिर मांगता,
हाडी दीधो फेर।
लाख सळूंबर नित दिये,
तो रण पलतां देर ॥ ३ ॥

शब्दार्थ :– सिर मांगता=सिर लेने के अधिकारी थे, फेर=फिर और, दुबारा, तो=तुम्हारा, रण=ऋण, पलतां=दूर होना, ऋण-मुक्त होना।

भावार्थ :– उसी भाव-भूमि पर कवि फिर कहता है कि हे महाराणा ! आप केवल रावत का मस्तक लेने के अधिकारी थे। किन्तु जब उसकी पत्नी हाडी ने भी आपके हित अपना मस्तक दे दिया तब आप जागीर में चाहे एक लाख सलूम्बर नित्यप्रति दें, आप अपना वह दुहरा ऋण उतार नही सकते।

हेक सळूंबर मे दई,
यां सिर दीधा दोय ।
राज दियां कह राजसी,
रण पलणो कद होय ॥ ४ ॥

शब्दार्थ – हेक=एक, दई=प्रदान की, राजसी=महाराणा राजसिंह, पलणो=दूर होना ।

भावार्थ – महाराणा राजसिंह कहते हैं – मैंने केवल एक सलूम्बर ठिकाना दिया था, जिसके बदले में मैं इनसे एक ही मस्तक लेने का अधिकारी था । लेकिन इन्होंने तो दो सिर दे दिये हैं – एक हाडी ने और दूसरा उसके पति रावत ने । इनकी स्वामिभक्ति से उऋण होने के लिए यदि मैं इन्हें अपना सम्पूर्ण मेवाड राज्य भी दे दूं, तब भी इनका यह ऋण मुझसे कब उतर सकता है ?

राण खोलसी डोरड़ा,
परण उदयपुर आय ।
हूँ जद देसूं खोलवा,
रावत सुरपुर मांय ॥ ५ ॥

शब्दार्थ :- खोलसी=खोलेंगे, डोरडा=विवाह-ककण, परण=विवाह कर, देसू खोलवा=खोलने दूंगी, माय=मे ।

भावार्थ – स्वर्ग में पहुँचकर हाडी अपने पति से कहती है कि हे प्रियतम ! चारुमती के साथ विवाह कर महाराणा सकुशल उदयपुर लौट कर जब अपने विवाह-ककण खोलेंगे तभी मैं तुम्हे अपने विवाह-ककण यहाँ स्वर्ग में खोलने दूँगी ।

हाडी सिर दीधां पछे,<br>
फिम परणे तुरकाण ।<br>
सिन्धूड़ो रावत सुणे,<br>
जलो सुणे महाराण ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :- पछे=उपरान्त, बाद मे, तुरकाण=औरगजेब, सिन्धूडो=वीररस-वर्द्धक 'सिन्धू' राग, जलो=विवाह के अवसर पर गाये जाने वाला गीत ।

भावार्थ :- हाडी का पति रावत तो सिन्धूराग सुन रहा है अर्थात् औरगजेब के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रस्थान कर रहा है और महाराणा 'जला' सुन रहे हैं अर्थात् चारुमती से विवाह करने के लिए किशनगढ की ओर प्रयाण कर रहे हैं। कवि कहता है कि वीरागना हाडी ने जब अपना मस्तक दे दिया तब औरगजेब चारुमती से शादी कैसे कर सकता है ?

हाडी सिर नहँ देवती,
चढती हँवर पीठ।
पँले फळसे ढीलड़ी,
श्रवरंग ढवतो नीठ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ – हँवर=अश्व, पँले फळसे=आबादी के उस पार, ढीलड़ी=दिल्ली, ढवतो=ठहरता, नीठ=ब-मुश्किल।

भावार्थ :– हाडी के अपूर्व पराक्रम का परिचय देते हुए कवि कहता है कि यदि वह वीरांगना इस प्रकार अपना मस्तक नहीं देती और अश्वारूढ होकर युद्ध-भूमि में आ पहुँचती तो औरंगजेब समर से भागकर दिल्ली के पँले पार भी ब-मुश्किल ठहर पाता।

हाडी सुरपुर गोखड़ा,
श्रँजसी देख विहाव।
राण तणे सिर सेवरो,
राव तणे सिर घाव ॥ ८ ॥

शब्दार्थ – गोखड़ा=गवाक्ष, श्रँजसी=गर्वित हुई, विहाव=विवाह, तणे=के, सेवरो=सेहरा।

भावार्थ :- कवि उस वीरागना के क्षत्रियोचित मनोभावो का चित्रण करते हुए कहता है - सुरपुर के गवाक्ष से, महाराणा का विवाह होते देखकर हाडी अत्यन्त गर्वित हुई। उसने देखा कि महाराणा के सिर पर जहा सेहरा सुशोभित है वहां अपने पति रावत के मस्तक पर शस्त्रो के घाव शोभा पा रहे हैं।

हाडी रो सिर बन्धियो,
रावत रे गळ मांह।
पारवती सांसे पड़ी,
निज ओळखणो नाह ॥ ६ ॥

शब्दार्थ :- गळ माह=गले मे, सासे=सशय मे, ओळखणो=पहिचान मे आने वाला, नाह=नाथ, शिव।

भावार्थ :- युद्ध-भूमि मे जब पार्वती ने रावत को, जिसके गले में हाडी का मस्तक बँधा झूल रहा था, देखा तो वह सशय मे पड गई कि यहां तो ये दो-दो मुडमाल-धारी हैं; इनमें मेरा पति महादेव आखिर कौन है?

अलकार :- भ्रान्तिमान।

रम्भा टळ टळ नीसरे,
केम करे गळबांह।
हाडी रो सिर देखियो,
रावत रे गळमांह ॥१०॥

शब्दार्थ :– टळ टळ=दूर-दूर रहकर, नीसरे=निकल जाती हैं, गळबांह=वरण, गळमांह=गले में।

भावार्थ :– एकपत्नी-व्रत को निभाने वाले उस रावत का उदात्त चरित्र बताते हुए कवि कहता है कि जब वह रावत युद्ध कर रहा था तब अप्सराएँ उससे दूर-दूर रहकर ही निकल जाती थी। हाडी का मस्तक उसके गले में देखकर वे उसका वरण कैसे कर सकती है?

कट साळू सिर कट्टियो,
हाडी कियो बरीस।
रावत लीधो हेत सूं,
घूंघट वाळो सीस ॥११॥

शब्दार्थ :– साळू=साडी, बरीस=बख्शीश, सीस=मस्तक।

भावार्थ :– हाडी ने जब अपना मस्तक धड़ से विच्छिन्न किया तब पहले साडी कटी और फिर गर्दन। कवि कहता

है कि ऐसे घूंघट वाले अनावरित मस्तक को जब उसने रावत को प्रदान किया तो उसने उसे अतिशय प्रेम से गले में धारण किया।

कट साळू सिर कट्टियो,
घूंघट रहियो भाळ।
यो मुख रावत देखियो,
तूं किम देखे थाळ ॥१२॥

शब्दार्थ :– भाळ=देख।

भावार्थ :– वीर-पत्नी हाडी कहती है कि हे पुरुष-वाचक थाल! पहले साड़ी कटी, बाद में मस्तक। देख यह घूंघट ज्यों का त्यों रह गया! सुन, हाडी के इस मुख को तो एकमात्र रावत ने देखा है; पर पुरुष होकर तू इसे कैसे देखे?

धन पड़दा री धण तने,
नह मेलियो उघाड़।
सीस पुगायो पिउ कने,
घूंघट रे ओढाड़ ॥१३॥

शब्दार्थ :– पड़दा री धण=अन्त पुर मे रहने वाली स्त्री, तने=तुम्हें, ओढाड़=प्रावरण।

नित देखे हरवल महीं,
रावत री खग वाह।
सुरपुर हाडी आगळे,
नव लख करे सराह ॥१७॥

शब्दार्थ – हरवल=युद्ध का अग्रभाग, खग वाह=तलवार चलाना, आगळे=समक्ष, नव लख=नौ लाख शक्तियाँ, सराह=सराहना।

भावार्थ – रावत के शौर्य की प्रशसा मे कवि कहता है कि युद्ध के अग्रभाग (हरावल) मे तलवार के निरन्तर प्रहार करते हुए रावत को देखकर नौ लाख शक्तियां स्वर्ग मे हाडी के समक्ष उसकी सराहना करने लगी।

खाधो छिन मे खोलियो,
हाडी हथ बळिहार।
उण ही हाथा डोरड़ो,
खोलत लागी वार ॥१८॥

शब्दार्थ – डोरडो=विवाह ककण, खाधो=गर्दन, खोलियो=काटली, खोलत=खोलते हुए, वार=विलब।

भावार्थ – कवि कहता है कि वीरागना हाडी के उन हाथो की बलिहारी है, जिन्होने एक क्षण मे गर्दन को धड से अलग

मर दिया। लेकिन अब वे ही हाथ, स्वर्ग मे पहुँचने पर अपने पति के विवाह-कंकण को खोलने मे विलंब कर रहे है।

पिउ अरियां धड़ खोलिया,
अब तो खोलो आय।
हाडी बंधिये डोरड़े,
बैठी सुरपुर मांय ॥१६॥

शब्दार्थ – पिउ=पति, अरिया=शत्रुओं की, खोलिया=काट दी।

भावार्थ – हाडी अपने पति से कहती है – हे प्रियतम! युद्ध-भूमि में आपने तलवार से शत्रुओं के धड खोल दिये हैं (तलवार से शत्रुओं की गर्दनें काट दी हैं); अब तो आकर मेरे विवाह-कंकण खोलो! यह आपकी हाडी, जिसके हाथ में विवाह-कंकण बंधे हैं, स्वर्ग मे बैठी आपकी प्रतीक्षा कर रही है।

हाडी सुरपुर रे मँही,
सुर नारियाँ गवाय।
तो रावत रण नहँ तजे,
ओळूं रही सुणाय ॥२०॥

शब्दार्थ – तो=फिर भी, ग्रोळूं=राजस्थान मे गाया जाने वाला उत्कंठा-परक लोकगीत।

भावार्थ :– युद्ध-रत रावत का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि स्वर्ग मे अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई हाडी देवागनाओ से 'ग्रोळूं' गवा रही है, रावत सुन रहा है; तथापि वह युद्ध से विरत नही होता।

धन धन हाडी जात धन,
धन धन मात र तात।
मोड़ खुलायो पर हतां,
कंध खोल्यो निज हात ॥२१॥

*शब्दार्थ :– जात=जाति, मोड=सेहरा, पर हता=दूसरो के हाथो से, कध=गर्दन।*

भावार्थ :– हे वीरागना हाडी ! तुझे धन्य है, धन्य है ! तुम्हारी क्षत्रिय जाति को भी धन्य है ! माता-पिता भी तुम्हारे धन्य है ! विवाह के अवसर पर बाँधा गया सेहरा तो तुमने दूसरो के हाथो खुलवाया, किन्तु कधे को अपने ही हाथो से खोला (अपने ही हाथो से अपनी गर्दन काट ली)।

अलकार –वीप्सा।

हाडी हाथ सराहणा,
तोवाळा इण बात ।
सीस खवासण खोलती,
कंध खोल्यो निज हात ॥२२॥

शब्दार्थ :– तोवाळा=तुम्हारे वाले, खवासण=नाइन, खोलती=संवारने के लिये सुलझाती थी ।

भावार्थ :– कवि कहता है कि हे हाडी ! तुम्हारे हाथों की सराहना मैं इसलिए करता हूँ कि तुम्हारे सिर के गूँथे हुए बालों को तो नाइन खोलती थी, किन्तु कंधा तुमने अपने ही हाथो से खोला (अपने ही हाथों अपनी गर्दन काट ली) ।

सीस दियो सुरपुर गई,
हाडी आतुर होय ।
तें देवत नहँ धोकिया,
देवत धोके तोय ॥२३॥

शब्दार्थ :– देवत=देवता, धोकिया=नमन किया, तें=तुमने, तोय=तुम्हे ।

भावार्थ :– विवाहोपरान्त ससुराल में पहुँचकर, परंपरा के अनुसार, वधुऐं देवताओं को नमन करती है । किन्तु हाडी वैसा

नही कर सकी । क्योकि उसे तो ससुराल पहुँचते ही अपना बलिदान करना पडा था । इसी सदर्भ मे कवि कहता है :—

हे हाडी ! ससुराल आकर तुमने अपना मस्तक दे दिया और बडी आतुरता से तुम स्वर्ग जा पहुँची । इस कारण मर्त्य-लोक मे देवताओ को तुम नमन नही कर सकी । लेकिन तुम्हारे इस अपूर्व कर्तव्य-पालन के आगे श्रद्धानत देवता स्वर्ग मे तुम्हारा अभिवादन कर रहे है ।

हाडी भूखण बाँटिया,
सुरपुर लिया न साथ ।
धड रा रंग महला दिया,
सिर रा रावत हाथ ॥२४॥

शब्दार्थ — भूखण=आभूषण, बाँटिया=दान कर दिये ।

भावार्थ — युद्ध-वीर हाडी की दान वीरता पर कवि अपनी कल्पना प्रस्तुत करता है — हाडी अपना मस्तक देकर जब स्वर्ग गई तब उसने अपने आभूषण अपने साथ नही लिये । धड के आभूषण तो उसने रक्त रंजित कर महल को और मस्तक के आभूषण अपने पति रावत को प्रदान किये ।

हाडो रण दिन खोलियो,
निज खांधो निज हात ।
आज न खुल्ले डोरड़ा,
कह रावत किण बात ॥२५॥

शब्दार्थ :– खाधौ=कधा, गर्दन, डोरडा=विवाह-कंकण ।

भावार्थ :– वीर-गति पाकर रावत जब स्वर्ग पहुँचा तब उसने हाडी से कहा – हे प्राणप्रिये ! युद्ध के दिन तो तुमने अपना कधा अपने ही हाथों अविलब खोल लिया था (अपने हाथो से अपनी गर्दन काट ली थी), किन्तु क्या कारण है कि आज तुम मेरे विवाह-ककण खोलने मे विलब कर रही हो ?

हथ जचियो कंध खोलवा,
सुणो प्राण रा नाथ ।
गाँठ न खुल्ले डोरड़ा,
हाडी सूं इण बात ॥२६॥

शब्दार्थ :– जचियो=अभ्यस्त हो गया, बात=कारण ।

भावार्थ :– रावत के उक्त प्रश्न के उत्तर में हाडी कहती है – हे प्राणपति ! सुनिये, मेरा हाथ कधा खोलने (गर्दन काटने) मे अभ्यस्त हो गया है, वह विवाह-कंकण की ग्रन्थि खोलने का अभ्यासी नही है । इसीलिये तो यह विलब हो रहा है ।

शब्दार्थ – दीठा=देखे, घणा=बहुत से, गढ=दुर्ग ऊजळो=उज्ज्वल ।

भावार्थ – कवि कहता है – हे हाडी ! मैंने बहुत से गाँव देखे हैं, जहाँ के मकानों की दीवारें समय बीतने पर वर्षा आदि के प्रभाव से काली पड गई हैं । परन्तु तुम्हारे नाम के कारण सलूम्बर का दुर्ग तो आज भी उज्ज्वल है ।

हाडी संजोड़े हुई,
सुरपुर में जिण दाण ।
कुसळ उदयपुर आवियां,
संजोड़े महाराण ॥३१॥

शब्दार्थ – सजोडे=जोडे सहित दाण=समय, संजोडे=जोडे सहित ।

भावार्थ – वीर-गति पाकर रावत के स्वर्ग पहुँचने पर जब हाडी ने अपने को युगल रूप में पाया, तब महाराणा जोडे सहित अर्थात् चारुमती के साथ विवाह कर, अपनी राजधानी उदयपुर में सकुशल आये ।

इण पिव नूं रण मेलियो,
उण पिव राख्यो धाम ।
केकई नीचो देखियो,
हाडी ऊंचो काम ॥३२॥

शब्दार्थ – इण=इस हाडी ने, उण=उस कैकेयी, मेलियो=भेजा ।

भावार्थ – कैकेयी और हाडी के कर्तव्यों की तुलना करते हुए कवि कहता है कि उस वीरांगना के उच्च कर्तव्य को देखकर दशरथ की रानी कैकेयी लज्जानत हो गई । क्योंकि इस वीर-पत्नी ने तो अपने पति को युद्ध में भेजा, चाहे उसे अपनी बलि देनी पड़ी, और वह कैकेयी स्वार्थ के कारण अपने पति दशरथ को राजप्रासाद में रोके रही ।

सिर दीठो गळ राव रे,
हाडी कीधो भेंट ।
सिव धण घूंघट खेंचियो,
जाण्या देवर–जेठ ॥३३॥

शब्दार्थ – सिव धण=शिव की पत्नी पार्वती, देवर जेठ=शिव के भाई बन्धु ।

भावार्थ – मुंडमाल-धारी रावत को देखकर संशय में पड़ी हुई पार्वती की मन स्थिति बताते हुए कवि कहता है – युद्धवीर रावत के गले में हाडी द्वारा भेंट किया हुआ मस्तक देखकर शिव-पत्नी पार्वती ने समझा कि यह मुंडमाल-धारी (रावत) महादेव के भाई-बन्धुओं में से है, और इस कारण उसने अपना घूंघट खींच लिया ।

अलंकार :– भ्रान्तिमान ।

सिव सिर दीठौ राव गळ,
न्हाकण लगा निसास ।
सकियक बंधव आविया,
बंटवाड़े कैलास ।।३४।।

शब्दार्थ :– न्हावण=डालने, निसास=नि:श्वास, सकियक=शायद, बटवाड़े=हिस्सा बटाने ।

भावार्थ – रावत के गले में हाडी का मस्तक देखकर शिव भी विस्मय में डूब गये और नि:श्वास डालने लगे। उन्होंने समझा कि शायद यह मुंडमाल-धारी मेरे भाई-बन्धुओं में से है, जो कैलाश-पर्वत में हिस्सा बटाने आया है।

अलंकार :– भ्रान्तिमान ।

कुळ कीरत सीखर चढी,
हरख चढी हिंदवाण ।
हाडी सुरपुर मग चढो,
जान चढी जद राण ।।३५।।

शब्दार्थ :– कीरत=कीर्ति, सीखर=शिखर, हरख=हर्ष, हिंदवाण=हिन्दुस्तान, मग=मार्ग पर, जान=बारात ।

भावार्थ :- किशनगढ की राजकुमारी चारुमती से विवाह करने के लिये जब महाराणा की बारात चढी तब क्षत्रिय-कुल की कीर्ति अपने शिखर पर जा पहुँची, हिन्दुस्तान को अपार हर्ष हुआ और वीरागना हाडी अपना मस्तक देकर स्वर्ग के मार्ग पर आरुढ हुई ।

मारकरणा हाडी किया,
सीस दियो जिरण दारण ।
रावत मारे बैरियाँ,
तोरण मारे राण ।।३६।।

शब्दार्थ – मारकरणा=मारने वाले, सहारक, बैरियाँ=शत्रुओ को ।

भावार्थ :- हाडी का पति रावत युद्ध-भूमि मे शत्रुओ को मार रहा है और महाराणा राजसिंह किशनगढ के राजप्रासाद के दरवाजे पर तोरण मार रहे हैं । कवि कहता है कि उस वीरागना हाडी ने तलवार से अपना मस्तक काटकर मानो सबो को 'मारकना' बना दिया है ।

अलकार – निरुक्ति ।

रावत चढियो सीस ले,
हट चढियो तुरकाण ।
हाडी कुळ चढियो कळस,
चँवरी चढियो राण ॥३७॥

शब्दार्थ :– तुरकाण=औरगजेब, कळस=कलश, चँवरी=विवाह मे फेरे फिरने की एक रस्म ।

भावार्थ – कवि कहता है कि चारुमती से विवाह करने के लिये जब औरगजेब अपनी हठ पर चढा तब रावत ने अपनी पत्नी हाडी का मस्तक गले में धारण कर युद्ध के लिये चढाई की । और जब महाराणा चँवरी पर चढे अर्थात् चारुमती के साथ विवाह-मडप में फेरे फिरने लगे तब हाडी के वंश रूपी मन्दिर पर कीर्ति का कलश चढा ।

हाडी सुरपुर रे महीं,
ऊभी खोलण चाव ।
मोरत चूके डोरड़ा,
सेल न चूके राव ॥३८॥

शब्दार्थ :– महीं=मे, मोरत=मुहूर्त, डोरडा=विवाह-कंकण, सेल=भाला ।

भावार्थ :– विवाह-कंकरण खोलने की चाह लेकर हाडी स्वर्ग में अपने प्रियतम की प्रतीक्षा कर रही है। कवि कहता है कि इस प्रकार एक ओर हाडी का विवाह-कंकरण के खोलने का मुहूर्त तो चूक रहा है किन्तु दूसरी ओर रावत के भाले के प्रहार नहीं चूक रहे हैं।

हाडो सुरपुर हूलसे,
रावत वाहे सांग।
सुणता बांग मजीत में,
वे रण मेले बांग ॥३६॥

शब्दार्थ :– हूलसे=हर्षित होना, साग=भाला, बाहे=चलाना, मजीत=मस्जिद।

भावार्थ :– युद्ध-भूमि में भाले से प्रहार करते हुए अपने पति को देखकर हाडी हर्षित हो रही है। उसने देखा कि जिनकी बांग (ईश्वर के प्रति पुकार) मस्जिद में सुनाई देती थी वे आज, भाले के इन प्रहारों से, युद्ध-भूमि में बाग दे रहे हैं (चीख रहे हैं)।

अलंकार :– यमक।

परण उदयपुर पूगिया
मोड़ खोलियो राण ।
रावत खोलण डोरड़ा,
पूगा सुरग अथांण ॥४०॥

शब्दार्थ – पूगिया=पहुँचे, मोड=सेहरा, पूगा=पहुँचा, सुरग अथाण=स्वर्ग-स्थान ।

भावार्थ – चारुमती के साथ विवाह कर महाराणा जब सकुशल उदयपुर पहुँचे और उन्होने अपने सेहरे को खोला तब वह वीर रावत विवाह-ककण खोलने के लिये हाडी के पास स्वर्ग मे पहुँचा ।

हाडी हाथां सिर दियो,
सुणो बधाई माय ।
कहियो हाडा पीव नूं,
हँसती हँसती जाय ॥४१॥

शब्दार्थ :– माय=हाडी की माता, हाडा=हाडा जाति का क्षत्रिय, हाडी का पिता, हँसती हँसती=हर्षित होती हुई ।

भावार्थ – हाडी के बलिदान को सुनकर उसके माता-पिता कितने हर्षित हुए होगे, इस भाव-भूमि पर कवि कहता है कि

जब हाडी की माता ने अपनी बेटी (हाडी) के अपने ही हाथों अपना मस्तक देने की बात सुनी तो वह हर्षित होती हुई अपने पति हाडा के पास पहुँची और उसने पुत्री-जन्म की सफलता पर उसे बधाई दी।

हाडी बेटी सिर दियो,
सुणियो हाडै तात।
नैणां नींद न वापरे,
हरख करे दिन रात ।।४२।।

शब्दार्थ – नैणां=आँखों में, वापरे=व्याप्त होती है, हरख=हर्ष।

भावार्थ – मनोभावों का विश्लेषण करते हुए कवि उसी भाव-भूमि पर पुन: कहता है – जब उस वीरांगना के पिता ने सुना कि उसकी पुत्री हाडी ने अपने ही हाथों अपना मस्तक दिया है तो वह अहर्निश हर्ष-मग्न रहने लगा; हर्ष के कारण उसकी आँखों से नींद भी दूर रहने लगी।

रावत रवतांणी तणी,
घणी सराही वात।
मो सिर अरियां काटियो,
तैं काट्यो निज हात ।।४३।।

शब्दार्थ – रवताणी=हाडी, तणी=की, घणी=अतिशय, मो=मेरा ।

भावार्थ – वीर-गति पाकर रावत जब स्वर्ग पहुँचा तब उसने हाडी के समक्ष उसके कर्तव्य की बहुत-बहुत सराहना की। रावत ने कहा – हे प्रिये ! मेरा मस्तक तो शत्रुओ ने काटा, जबकि तुम्हारा सिर तुमने अपने ही हाथो से । इसलिये तुम मुझ से बढकर हो ।

नाह सराहो की मना,
अधका आप अमाप ।
म्हे म्हारो सिर वाढियो,
अरि सिर वाढ्या आप ।।४४।।

शब्दार्थ – नाह=स्वामी, की मना=क्या, अधका=बढकर, अमाप=नि सीम, वाढियो=काटा, वाढ्या=काटे ।

भावार्थ – हाडी कहती है – हे प्राणनाथ ! आप मेरी क्या सराहना करते हो । मुझमे आप कई गुना बढकर हैं ! मैने तो केवल एक अपना ही मस्तक काटा है, जबकि आपने शत्रुओ के असख्य मस्तक काटे है ।

हाडी जनमो जेण पुळ,
मायड़ भई उदास ।
सुणियो सिर दीधो जदन,
थई सौ गुणं हुलास ।।४५।।

शब्दार्थ :- जेण=जिस, पुळ=क्षण, मायड=माता, जदन=जिस दिन, थई=हुई ।

भावार्थ :- जब हाडी ने जन्म लिया था तब उसकी माता यह सोचकर कि पुत्री ने जन्म लिया है, बहुत उदास हुई थी । किन्तु जिस दिन उसने सुना कि उसकी पुत्री हाडी ने अपने हाथों अपना मस्तक दिया है, उसे सौ गुना अधिक हर्ष हुआ ।

लीधी कीरत लख मुखां,
कर लीधी करवाळ ।
हाडी हाथां मेलियो,
धड़ धरती सिर थाळ ।।४६।।

शब्दार्थ :- लीधी=प्राप्त की, लख=लाखों, लीधी=ली, उठाई, करवाळ=तलवार, मेलियो=रखा ।

भावार्थ :- कवि कहता है कि उस वीरांगना हाडी ने जब अपने हाथों में तलवार ली और अपने ही हाथों से अपना मस्तक

थाल में और धड पृथ्वी पर रखा तब उसने लाखो मुखो से कीर्ति प्राप्त की, उसके अद्‌भुत बलिदान की असंख्य लोग प्रशसा करने लगे ।

हाडी सहनाणी मेंही,
सिर मेल्यो जिण वार ।
चूडामणि सीता तणी,
वारूँ वार हजार ।।४७।।

शब्दार्थ – सहनाणी=सहदानी, मेंही=मे, जिण वार=जिस समय, वारूँ=निछावर करूँ ।

भावार्थ – सीता और हाडी के कर्तव्यो की परस्पर तुलना करते हुए कवि कहता है कि सीता ने भी अपने पति राम के पास सहदानी स्वरूप अपनी चूडामणि भेजी थी। लेकिन जब हाडी ने अपने पति के पास सहदानी स्वरूप अपना मस्तक काटकर भेजा तो उसके समक्ष वह चूडामणि तुच्छ प्रतीत होती है । मैं तो इस मस्तक रूपी सहदानी पर उस चूडामणि-सहदानी को हजार वार निछावर करता हूँ ।

अलकार – व्यतिरेक ।

हाडी धरियो थाळ महँ,
किया अनोखो काज ।
धड़ पड़ियो सिर कित गयो,
धरा अचंभे आज ॥४८॥

शब्दार्थ :- धरियो=रखा, कित=कहाँ, अचंभे=आश्चर्य करती है ।

भावार्थ :- कवि कहता है कि हाडी ने अपना मस्तक थाल में रखकर दरअसल अनोखा कार्य किया । यह पृथ्वी आज भी आश्चर्य करती है कि हाडी का धड़ तो जरूर मुझ पर गिरा, किन्तु सिर नहीं; आखिर वह कहाँ गया ?

नागण पूछ्यो नाग नूं,
देख अनोखो काज ।
धड़ बाज्यो सिर नहँ बज्यो,
सिर किण झेल्यो आज ॥४६॥

शब्दार्थ :- बाज्यो=आवाज की, बज्यो=आवाज की, किण=किसने ।

भावार्थ :- हाडी के उस अद्भुत कार्य को देखकर शेषनाग से उसकी पत्नी ने पूछा कि पृथ्वी पर धड़ के गिरने की आवाज

तो जरूर हुई, लेकिन मस्तक के गिरने की नही; आखिर ऊपर का ऊपर सिर आज किसने झेल लिया ?

पीहर थाळ न वाज्जियो,
हाडी यण अहँकार ।
थाळ बजायो सासरे,
सिर कट खटकी धार ॥५०॥

शब्दार्थ :– वाज्जियो=आवाज की, यण=इस, अहँकार=अमर्ष, धार=तलवार की धार ।

भावार्थ :– वीरांगना हाडी ने जब अपना मस्तक काटा तब तलवार की धार से टकराकर उसके हाथ मे रखा थाल बज उठा । कवि कहता है कि हाडी ने जब जन्म लिया था तब पुत्री-जन्म के कारण पीहर में थाल नही बजा था । इसी अमर्ष से उसने ससुराल में पहुँचकर इस प्रकार थाल बजाया ।

नरां बजाई मोखळां,
वाजी हिक हिक वार ।
सिर बज वाजी थाळ में,
हाडी री तरवार ॥५१॥

शब्दार्थ – मोकळां=बहुतो ने, हिक हिक=एक-एक, वज=आवाज करके, बाजी=आवाज की।

भावार्थ :– कवि कहता है कि अनेको योद्धाओ ने युद्ध-भूमि में तलवारें चलाईं। किन्तु वे शत्रु-मस्तक पर केवल एक-एक बार ही आवाज कर सकी। लेकिन हाडी की तलवार की बात तो दूसरी ही है। उसने एक साथ दो बार आवाज की। पहले वह सिर पर गिरकर और दूसरे थाल से टकराकर दो बार बजी।

निरखंती सुर-नारियाँ,
रगता रंगियो हाथ।
थे रावत आया सुरग,
सेल न लाया साथ ॥५२॥

शब्दार्थ :– निरखती=देखती, रगता रंगियो=रक्त-रंजित, थे=तुम, आप, सुरग=स्वर्ग, सेल=भाला।

भावार्थ – वीरगति पाकर रावत जब स्वर्ग पहुँचा तब हाडी ने कहा – हे प्राणनाथ! आप अपने साथ अपना भाला नही लेते आये! देवांगनाएँ, जैसी कि उनकी इच्छा है, आपके हाथो में उस रक्त-रंजित भाले को देखती।

सत री सहनाणी चही,
समर सळूंबर धीस ।
चूड़ामण मेलो सिया,
इण धण मेल्यो सीस ॥५३॥

शब्दार्थ :- सत=सतीत्व, चही=चाही, सळूंबर धीस=सलूम्बर का स्वामी, हाडी का पति, मेलो=भेजी, धण=स्त्री, हाडी ।

भावार्थ :- सीता से हाडी को अधिक बताते हुए कवि कहता है कि अपने-अपने पति के मांगने पर सीता और हाडी दोनों ने सहनाणियां पहुंचाई थी । लेकिन सीता तो केवल चूड़ामणि ही भेजकर रह गई, जब कि इस वीरांगना ने सहनाणी-स्वरूप अपना मस्तक काटकर भेजा ।

अलंकार :- व्यतिरेक ।

रावत संग रण जावती,
वा कद देती पीठ ।
रवताणी रंगमहल ने,
रंगियौ रंग मजीठ ॥५४॥

शब्दार्थ :- वा=वह, हाडी, कद=कब, रवताणी=रावत की पत्नी, हाडी, ने=को, रंग मजीठ=गहरा लाल रंग ।

भावार्थ –कवि कहता है कि यदि वह वीर-पत्नी हाडी अपने पति के साथ युद्ध मे जाती तो शत्रु को वह पीठ कब बताने वाली थी ? जब कि उसने हलके लाल रग से रगे हुए रगमहल को अपने रक्त से मजीठ रग मे रग दिया ।

इक इक हूँ अधका हुवा,
सीस दिया हित देस ।
रवताणी सतियाँ गुरू,
सूरा गुरु रवतेस ॥५५॥

शब्दार्थ –इक इक हूँ=एक से एक अधका=बढकर सूरा=शूरवीरों का, रवतेस=रावत, हाडी का पति ।

भावार्थ –कवि कहता है कि वीरागना हाडी और वीर पुरुष रावत दोनो एक से एक बढकर थे । दोनो ने अपने देश के हित अपने मस्तक दिये । एक ने अपना मस्तक देकर सतियो का गुरुत्व किया है तो दूसरे ने वीरगति पाकर योद्धाओ को वीरता का पाठ पढाया है ।

सीस पुगायो पिउ कने,
थायो रगता कीच ।
रहियो पण वहियो नहीं,
काजळ नैणाँ बीच ॥५६॥

शब्दार्थ – पुगायो=पहुचाया, कने=पास, थायो=हुआ, रगता=रक्त का, नैणां=आंखो का ।

भावार्थ :– उस वीर-पत्नी हाडी ने अपने पति के पास जब अपना मस्तक पहुँचाया तब राजप्रासाद मे रक्त का कीचड़ मच गया । कवि कहता है कि सतीव्रत निभाते हुए उस वीरागना के नेत्रो मे आंसू तक नही आये और इस कारण उसकी आंखो का कज्जल बहा नही, ज्यो का त्यो बना रहा ।

निज हाथां सिर काढियो,
कुण काटे सिरदार ।
धन हथळेवं रंगिये,
रँग चाढ्यो तरवार ॥५७॥

शब्दार्थ :– कुण=कौन, सिरदार=वीर पुरुष, धन=धन्य, चाढयो=चढाया ।

भावार्थ :– हाडी ने अपने हाथो से अपना मस्तक धड से अलग कर दिया । कवि कहता है कि इस वीर-नारी की तरह कौन वीर पुरुष अपना सिर काट सकता है ? अर्थात् पुरुष भी इस नारी की समता नही कर सकता । धन्य है उस वीरागना को, जिसने मेहँदी-मडित हाथो से तलवार पर अपने रक्त का रग चढा दिया ।

भावार्थ – वीर-पत्नी हाडी ने अपने हाथो अपना मस्तक दिया था। नारी तो ठीक, पुरुष भी इस तरह अपना मस्तक नही दे सकता। कवि कहता है कि वीर पुरुष को यदि कोई दुलहिन मिले तो वह हाडो सदृश ही होनी चाहिए।

अलकार – असम।

रवताणी रावत अगै,
देवा लई वदाय।
नरपुर बँधिया डोरड़ा,
खोल्या सुरपुर जाय ॥६०॥

शब्दार्थ –अगै=पहले, वदाय=बधाना, स्वागत करना, डोरडा= विवाह कंकरण।

भावार्थ – कवि कहता है कि वीरगति पाकर रावत भी स्वर्ग मे पहुँचा, किन्तु उसके पहले उसकी पत्नी हाडी का देवता स्वागत कर चुके थे। धन्य है, दोनो पति-पत्नी, जिन्होने मर्त्यलोक में बँधे विवाह-कंकरण स्वर्ग मे जाकर खोले।

धन रवताणी सूरमी,
घरण रावतां विचाळ।
सूपड़ बाज्यौ जनम दिन,
रण दिन बाज्यौ थाळ ॥६१॥

शब्दार्थ :– सूरमी=बहादुर, घरा=बढकर, बिचाळ=बीच, सूपड=सूप, बाज्यो=बजा ।

भावार्थ – कवि कहता है कि हे वीरागना हाडी ! तुम्हे धन्य है ! तुम क्षत्रिय नारियो मे ही नही, क्षत्रिय पुरुषो मे भी श्रेष्ठ हो ! तुम्हारे जन्मदिन पर अवश्य सूप बजा था, लेकिन युद्ध के दिन तो थाल ही बजा ।

इण निज हाथां सिर दियो,
बातां रखण जिहान ।
सीता रही अजोधिया,
रवताणी सुरथान ॥६२॥

शब्दार्थ :– इण=इस हाडी ने, जिहान=ससार मे, अजोधिया=अयोध्या, सुरथान=स्वर्ग ।

भावार्थ .– कवि कहता है कि सीता और हाडी दोनो क्षत्राणी थी । किन्तु इस वीरागना ने तो ससार मे अपनी कहानी को अमर रखने के लिये अपने हाथो अपना मस्तक दिया । यही कारण है कि हाडी को स्वर्ग प्राप्त हुआ और सीता को अयोध्या (मर्त्यलोक) मे ही रहना पडा ।

लंका तज आई अवध,
सीतां रघुवर साथ ।
तज नरपुर सुरपुर गई,
धन हाडी धन मात ॥६३॥

शब्दार्थ :– नरपुर=मर्त्यलोक, धन=धन्य ।

भावार्थ – कवि कहता है कि हाडी सीता से बढकर है। सीता तो लका छोडकर अपने पति रामचन्द्र के साथ अयोध्या चली आई, और यह वीरागना मर्त्यलोक छोडकर स्वर्ग मे पहुँची । हे हाडी ! तुझे धन्य है, तुम्हारी माता को भी धन्य है !

निज हाथां सिर काटियो,
फिर धर पोढी गाँज ।
विधना रवताणी घड़ी,
केता रावत भाँज ॥६४॥

शब्दार्थ :– पोढी=सोई, गाँज=नष्ट होकर, केता=कितने, भाँज=तोडकर ।

भावार्थ – हाडी के पराक्रम पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कवि कहता है कि इस वीरागना ने अपने ही हाथो अपना मस्तक काटा और तब यह मृत्यु को प्राप्त होकर धराशायी

हुई। विधाता ने कितने वीर पुरुषों को तोड़कर इस क्षत्राणी के शरीर की रचना की होगी ?

इण रावत नूं सिर दियौ,
रवताणी रिझवार ।
रावत सिर सिव नूं दियौ,
दहुं सिर रा दातार ॥६५॥

शब्दार्थ :– रिझवार=प्रसन्न होकर, नूं=को, दहुं=दोनों, हाडी और उसका पति, दातार=देने वाले ।

भावार्थ :– कवि कहता है कि वीरांगना हाडी और उसका पति रावत दोनों इस संसार में सिर के दातार कहलाए । हाडी ने प्रसन्न होकर अपना मस्तक अपने पति को भेंट किया तो रावत ने अपना सिर शिव को ।

मुख दीठौ भूखरण दियौ,
रावत गोरण रात ।
रवताणी अधकी रही,
सीस दियो परभात ॥६६॥

शब्दार्थ :– मुख दीठौ=मुंह दिखाई मे, गोरण रात=सुहाग रात ।

भावार्थ – कवि कहता है कि यह क्षत्राणी अपने पति रावत से बढकर ही रही। देखो कि रावत ने सुहाग रात मे हाडी को मुँह-दिखाई मे आभूषण ही दिया, जब कि इस वीरांगना ने उसके बदले उसे प्रभात मे अपना मस्तक दे डाला।

रावत इक चाही जठै,
सहनाणी निज हाथ।
रवताणी सिर मेलियो,
सिर रा भूखण साथ ॥६७॥

शब्दार्थ – जठै=जहां, मेलियो=रखा, सिर रा=मस्तक के।

भावार्थ – कवि कहता है कि हाडी की विशेषता का वर्णन कहां तक करें? युद्ध मे जाते समय जहां रावत ने केवल एक ही सहनाणी चाही थी, वहां इस वीर पत्नी ने अपना मस्तक तो दिया ही, साथ मे शिरोभूषण भी दे डाले।

नीचा सिर कायर नरां,
थाया जगत विखियात।
हाडी सिर देता हुवो,
सर ऊँचो त्रिय जात ॥६८॥

शब्दार्थ – थाया=हुए त्रिय=स्त्री, जात=जाति।

भावार्थ :– कवि कहता है कि हाडी ने जब अपना मस्तक काटा तब संसार भर में कायरों के मस्तक लज्जा के कारण नीचे झुक गये और स्त्री जाति के मस्तक स्वाभिमान से ऊँचे उठ गये।

रीता बाजे जनम दिन,
सुणिया जगत बिचाळ ।
हाडी सिर धरियो जिको,
बाजे भरियो थाळ ॥६९॥

शब्दार्थ :– रीता=खाली, धरियो=रखा, भरियो=भरा हुआ ।

भावार्थ :– कवि कहता है कि पुत्र के जन्म दिन पर संसार में रीते थाल बजते सुने गये है। लेकिन हाडी का थाल तो, जबकि उसने अपना मस्तक काटकर उसमें रखा, भरा हुआ बजा था।

सीता रावण ले गयो,
जाणी अबळा जात ।
हाडी सबळा होवती,
दस सिर कटता साथ ॥७०॥

शब्दार्थ :— अबळा=स्त्री, निर्बल, सबळा=शक्तिशाली ।

भावार्थ :— कवि कहता है कि रावण सीता को अबला पाकर ले भागा था। यदि वहाँ सबला यह हाडी होती तो, इसे ले जाना तो दूर, उसके दसो मस्तक एक साथ कटते ।

रखड़ी मैमंद सिर सहित,
पिव रे हाथ दियाह ।
हाडी पीळा भूखणां,
कंकू वरण कियाह ।।७१।।

शब्दार्थ — रखडी=शिरोभूषण, मैंमंद=शिरोभूषण, कंकू वरण= कुकुम रग के ।

भावार्थ :—हाडी ने जब अपना मस्तक काटकर अपने पति के हाथो मे सौपा तब उसके साथ रखडी और मैंमंद शिरोभूषण भी थे । कवि कहता है कि वे आभूषण सोने के बने होने के कारण पीले रग के थे । लेकिन जब वे दिये गये तब रक्त-रजित होने से उनका रग कु कुम-सा होगया था ।

अलकार :— तद्गुण ।

सिव ऊभा वाहन बिना,
सिर दीठौ गळ माँय ।
पड़ भूले रावत कने,
नंदी ऊभौ जाय ।।७२।।

शब्दार्थ :– ऊभा=खड़े, गळ माँय=गले मे, पड़ भूले=भूल में पड़कर, भ्रान्ति-युक्त होकर ।

भावार्थ :– रावत के गले में हाडी का मस्तक झूल रहा था । कवि कहता है कि यह देखकर नन्दी ने उसे मुण्डमाल-धारी शिव समझा और उसके पास जाकर खड़ा हो गया । युद्ध-भूमि में शिव इस प्रकार विना वाहन के ही खड़े रहे ।

अलंकार :– भ्रान्तिमान ।

जनकपुरी विच सो गुणी,
नगर सळूंबर बात ।
हाडी निज सिर तोड़ियौ,
धनु तोड्यौ रघुनाथ ।।७३।।

शब्दार्थ :– तोड़ियौ=तोड़ा, विच्छिन्न किया, धनु=धनुष ।

भावार्थ :– कवि कहता है कि जनकपुरी में सलूम्बर नगर की बात सौ गुनी अधिक है । क्योंकि राम ने तो पुरुष होकर

भी जनकपुरी मे धनुष ही तोडा था, जब कि नारी होते हुए भी वीरागना हाडी ने सलूम्बर में अपने हाथों से अपना मस्तक तोडा (विच्छिन्न किया)।

पर हाथां पाई नरां,
सूरां नर विखियात।
हाडी तैं लीधी हुलस,
वीरगति निज हात ।।७४।।

शब्दार्थ :– सूरा=शूरवीरो ने, नर=बहुत से, हुलस=हर्षित होकर।

भावार्थ – कवि कहता है कि बहुत से वीर-पुरुषो ने दूसरो के हाथो वीरगति प्राप्त की, यह ससार प्रसिद्ध है। किन्तु हे वीरागना हाडी! तुमने तो हर्षित होकर अपने ही हाथो से वीरगति पाई है। इस प्रकार तुम्हारा वीरगति प्राप्त करना बेजोड है।

कीधो इण कारज जिसो,
किण कीधो जग माँह।
हाडी पिव नूं सिर दियो,
सिव नूं दीधो नाँह ।।७५।।

शब्दार्थ :- कारज=कार्य, जिसो=जैसा, नांह=नही।

भावार्थ :- कवि कहता है कि जैसा कार्य इस वीरागना हाडी ने किया है, वैसा संसार में किसने किया ? सभी योद्धा अपना मस्तक शिव को देते हैं लेकिन हाडी ने नही दिया। उसने तो अपना मस्तक अपने पति को ही भेट किया।

हाडी रिझवारी करी,
करी न किण जग मांह।
चँवरी पिव नूं मन दियौ,
सीस दियौ महलांह ॥७६॥

शब्दार्थ :- रिझवारी=प्रसन्न होकर दान देना, चँवरी=विवाह-मण्डप, महलांह=महलो मे।

भावार्थ :- कवि कहता है कि हाडी ने प्रसन्न होकर जो दान दिया, ससार में वैसा किसी ने नही किया। अपने पति को उसने चँवरी में तो अपना मन दिया और महलो मे अपना मस्तक।

धन हाडी तें सिर दियौ,
कियौ खळां रो कीच।
सिव धण लेवे वारणां,
दो घूंघटड़ा बीच ॥७७॥

शब्दार्थ – सळां=शत्रु, कीच=विध्वस, सिव घरा=शिव पत्नी, वारणां=स्त्रियो के परस्पर अभिवादन करने की एक पद्धति ।

भावार्थ – कवि कहता है कि हे वीर-पत्नी हाडी ! तुमने अपना मस्तक देकर शत्रुओ का विध्वस कर दिया है । तुम्हें धन्य है ! शिव-पत्नी पार्वती दो (हाडी एव पार्वती के) घूघट के बीच वारणा ले रही है ।

तिरिया सिर ऊमर मंही,
तैं कीधो बगसीस ।
हाडी ने सुरपुर दिये,
सिव घरा सुभ आसीस ।।७८।।

शब्दार्थ – तिरिया=स्त्री, ऊमर=उम्र, बगसीस=प्रदान, ने=को, सिव घरा=पार्वती ।

भावार्थ – पार्वती स्वर्ग मे हाडी को शुभाशीर्वाद देती हुई कहती है कि हे वीरागना ! मेरी इतनी उम्र बीत गई, पर अब तक तुम्हारे सिवाय किसी अन्य स्त्री ने अपना मस्तक मुझे नही दिया, एकमात्र तुमने ही प्रदान किया है ।

हाडी सिर दीधां हुआ,
दो घूंघटडा पास ।
दुगुरणी लजवंती दिपै,
सिव महळी कैलास ।।७९।।

शब्दार्थ – घूघटहा=घूघट, दिपै=शोभा पाती है, शिव महळी= पार्वती।

भावार्थ – कवि कहता है कि जब वीर-पत्नी हाडी ने अपना मस्तक पार्वती को प्रदान किया तब उसके दो घूघट शोभा पाने लगे। इस प्रकार कैलाश में वह (पार्वती) दुगुनी लजवती के रुप मे शोभा पाने लगी।

इक घूंघट सिव धण तणो,
इक हाडी रो पास।
दो घूंघट उर देखिया,
चकित हुऔ कैलास ।।८०।।

शब्दार्थ – तणो=का, कैलास=कैलाशवासी।

भावार्थ – एक घूघट तो स्वय पार्वती का और दूसरा हाडी का। कवि कहता है कि इस प्रकार पार्वती के हृदय पर एक साथ दो घूंघट देखकर सभी कैलाशवासी आश्चर्य करने लगे।

रावत धर पड़ियां लियो,
हाडी रो सिर जोय।
पारवती रे उर परा,
माल्है घूंघट दोय ।।८१।।

शब्दार्थ – पडिया=गिरने पर, जोय=देखकर, परा=पर, माल्है= सुशोभित होते है ।

भावार्थ – कवि कहता है कि रणभूमि में रावत के धराशायी होते ही, उसके गले में हाडी का मस्तक देखकर पार्वती ने उसे उठा लिया और अपने गले मे धारण कर लिया । इस प्रकार पार्वती के हृदय पर दो घू घट (एक स्वय का, दूसरा हाडी का) शोभा पाने लगे ।

चकित हुई चूड़ामणी,
हनुमत रे हथ भाळ ।
हाडी सिर धरियो कई,
कीरत भरियो थाळ ।।८२।।

शब्दार्थ – भाळ=देखकर, कई=क्या, कीरत=कीर्ति ।

भावार्थ :- कवि कहता है कि अपने पति के पास सहनाणी स्वरूप भेजने के लिये हाडी ने जब अपना मस्तक काट कर थाल मे रखा तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो वह थाल कीर्ति से भर दिया गया हो । उस सहनाणी को देखकर तो हनुमान के हाथ में रखी सीता की भेजी हुई सहनाणी चूडामणि भी चकित हो गई ।

तें दीधो हित देस रे,
निज हाथां जिण बेर ।
नेणां जग मावे नहीं,
हाडी सीस सुमेर ॥८३॥

शब्दार्थ :– जिण बेर=जिस समय, नेणा=आंखो मे, सुमेर=सुमेरु पर्वत ।

भावार्थ :– कवि कहता है कि हे वीर पत्नी ! तू ने जब अपने हाथों अपना मस्तक देश-हित मे दे दिया, तब वह सुमेरु पर्वत के समान विराट बन गया । संसार की आँखों में वह समा नही रहा है ।

अलंकार :– अधिक ।

निज हाथां निज सिर कियो,
हाडी धड़ सूं दूर ।
देखण वेगो ऊगियो,
संहस करण ले सूर ॥८४॥

शब्दार्थ :– वेगो=शीघ्र, सेंहस=सहस्र, ऊगियो=उदित हुआ, करण=किरणें ।

भावार्थ – कवि कहता है कि जिस दिन वीरागना हाडी ने अपने हाथो अपना मस्तक धड से अलग कर दिया, उस दिन सूर्य अपने सहस्र कर (किरणें) लेकर उसे देखने के लिये समय से पूर्व शीघ्र उदित हुआ ।

विशेष – यहाँ 'हाथा' एव किरण वाची 'कर' शब्दो मे काव्य-चमत्कार द्रष्टव्य है ।

गई सळूंवर घर नहीं,
भागो पीहर वाट ।
रावत हाडी सुरग में,
भाग भड़ाँ बड थाट ।।८५।।

शब्दार्थ – भागी=टूट गई, वाट=मार्ग, भडाँ=योद्धाओ के, थाट=समूह ।

भावार्थ – कवि कहता है कि सलूम्बर अधीन नही रहा, खालसे हो गया । इसी प्रकार उस वीरागना के पीहर का रास्ता भी बन्द हो गया, वह भी खालसे हो गया । रावत और हाडी तो स्वर्ग मे है, वे वहाँ क्यो रहते ? उन योद्धाओ के तो भाग्य बहुत ही बडे है ।

हाडी सिर दे खर पड़ी,
खरगी खग री धार ।
उडगण रव ससि खर पड़े,
जस न खरे संसार ॥८६॥

शब्दार्थ :– उडगण=तारागण, रव=रवि, सूर्य, खर पडी=खिर पडी, खरगी=खिर गई ।

भावार्थ :– कवि की उक्ति है कि वीरांगना हाडी अपना मस्तक देकर धराशायी हो गई, खड्ग की धार खण्डित हो गई, इसी प्रकार कभी रवि, शशि और तारागण भी आसमान से टूटकर धरती पर गिर सकते हैं; अर्थात् सभी नश्वर हैं । किन्तु उस वीर-पत्नी का जो यश है, वह इस ससार में सदा अमर है ।

उडगण कहवे सूर नूँ,
मोड़ा ऊगो आज ।
हाडी हाथां सिर दियो,
ठेहरां देखण काज ॥८७॥

शब्दार्थ :– कहवे=कहते हैं, मोडा=विलब से, ऊगो=उदित होओ ।

भावार्थ :– हाडी ने जब अपना मस्तक दिया तब उसे अधिक समय तक देखने की इच्छा से तारागण सूर्य से कहते हैं – हे

रवि ! आज तुम विलंब से उदित होओ ! वीरांगना हाडी ने जो आज अपने ही हाथों अपना मस्तक दिया है उसे देखने के लिये हम आसमान में अधिक समय तक रुकना चाहते हैं।

सुणियो हाडी सिर दियो,
सेस कहे बळिहार।
नागण धरती थांभ ले,
देखण जाऊँ बार ॥८८॥

शब्दार्थ :– सेस=शेषनाग, नागण=शेषनाग की पत्नी, बार=बाहर, छटा।

भावार्थ :– हाडी के सिर देने की अद्भुत बात सुनकर शेषनाग अपनी पत्नी से कहता है कि उस वीरांगना की बलिहारी है; हे नागिन ! यदि तू थोडी देर के लिये इस पृथ्वी का भार संभाल ले तो मैं उसकी छटा देखने के लिये बाहर जाऊँ !

सिंघण जाया जनमता,
कह सुण सिंघण माय।
हाडी रा दरसण करां,
चख वेगा खुल जाय ॥८९॥

शब्दार्थ – सिघण जाया=सिंहिनी-पुत्र, कह=कहते हैं, चष=चक्षु, नेत्र, वेगा=शीघ्र ।

भावार्थ – जिस दिन हाडी ने अपना मस्तक दिया, उस दिन जन्म लेते ही सिंह-शावक अपनी माँ से कहने लगे कि हे जननी सिंहिनी ! सुनो, ऐसा कोई उपाय करो जिससे हमारे नेत्र शीघ्र खुल जायें, ताकि हम उस वीरांगना हाडी के दर्शन कर सकें ।

यूं सिर देती द्रौपदी,
ओरूँ आथड़ताह ।
हेमाळे गळता नहीं,
पंडव भड़पड़ताह ।।६०।।

शब्दार्थ – यूं=इस प्रकार, ओरूँ=और अधिक, आथड़ताह=युद्ध करते, हेमाळे=हिमालय में, भड़पड़ताह=धराशायी होते ।

भावार्थ – कवि कहता है कि पांडव पत्नी द्रौपदी यदि हाडी की तरह अपना मस्तक दे देती तो उसके पति पाँचों पांडव रावत की तरह और भी अधिक युद्ध करते और रण-भूमि में धराशायी हो जाते; हिमालय में उन्हें गलना नहीं पड़ता ।

राव कने सिर मेलियो,
कुण हाडो तव जोड़ ।
पीव छतां सत चढियो,
सतियाँ री सिरमोड़ ।।६१।।

शब्दार्थ – कने=समीप छता=जीवित रहते हुए, सत=सतीत्व, चढियो=चढा ।

भावार्थ – कवि कहता है कि हे वीरागना हाडी ! तुम्हारी समता मैं किससे करूँ ? तुमने अपने हाथो अपना मस्तक काट-कर अपने पति के पास पहुँचा दिया । अहो ! पति के जीवित रहते ही तुम्हे 'सत' चढ गया ! सचमुच तुम सतियो की सिर-मौर हो !

पार समदा जस गियो,
बाहर सके न आय ।
हाडी रा दरसण बिना,
जळ जंतू अकुळाय ।।६२।।

शब्दार्थ – गियो=पहुँचा जळ जतू=जलचर जीव, अकुळाय=अकुलाने लगे ।

भावार्थ – कवि कहता है कि उस वीरागना हाडी का विपुल यश जब सातो समुद्रो को लाँघता हुग्रा पार जा पहुँचा तब उन (समुद्रो) मे रहने वाले जल-जन्तु हाडी के दर्शन के लिये भीतर ही भीतर ग्रकुलाने लगे, क्योकि वे बाहर नही ग्रा सकते थे ।

गिर बीजा ग्राडा घणा,
जिण सूं ऊँचो होय ।
हाडी सिर दीधो जदन,
मेरू रहियो जोय ॥६३॥

शब्दार्थ – गिर=पर्वत, बीजा=ग्रन्य, जदन=जिस दिन ।

भावार्थ – कवि कहता है कि हाडी ने जिस दिन ग्रपना मस्तक दिया उस दिन सुमेरु पर्वत ग्रन्य सोये हुए पर्वतो से ऊँचा उठकर उस वीरागना के दर्शन करने लगा । सुमेरु पर्वत इसी लिये ग्रन्य पहाडो से ऊँचा है ।

ग्रलकार – ग्रतिशयोक्ति ।

चद सूर देखण ढबे,
हाडी रे रणवास ।
पीठ तपै ग्रग री वळे,
पोठ तपै सपतास ॥६४॥

शब्दार्थ – ढबे=ठहरे, भ्रग=चन्द्र का वाहन, मृग, वळे=ग्रौर, सपतास=सूर्य-वाहन, सप्ताश्व ।

भावार्थ – कवि कहता है कि हाडी के उस ग्रपूर्व बलिदान को देखने के लिये सूर्य ग्रौर चद्र उसके महल पर ठहर गये । इस प्रकार उनके रुक जाने से चन्द्र-वाहन हरिए ग्रौर सूर्यवाहन सप्ताश्व की पीठ तपने लगी ।

जे हनुमत संग मेलता,
हाडी ने रघुनाथ ।
चूडामण लाती कई,
दस सिर लाती साथ ॥६५॥

शब्दार्थ – जे=यदि, मेलता=भेजते, कई=क्या ।

भावार्थ – कवि कहता है कि जानकी की खोज करने के लिये श्री रामचन्द्र ने हनुमान के साथ यदि इस क्षत्राणी हाडी को भेजा होता तो वह हनुमान की तरह केवल चूडामणि लेकर थोडे लौटती, साथ मे उन (राम) के शत्रु रावण के दसो मस्तक भी लेकर ग्राती ।

भोज करण दानी हुवा,
कंचन दियो हमेस ।
हाडी इक दिन सिर दियो,
कर किण तणा विसेस ।।६६।।

शब्दार्थ – कर=हाथ, किण तणा=किसके, विसेस=बढकर ।

भावार्थ – कवि कहता है कि कुन्ती-पुत्र करण और राजा भोज विख्यात दानी हुए हैं, जो नित्य-प्रति सुवर्ण दान करते थे । किन्तु इस वीरागना हाडी ने तो केवल एक दिन मे ही अपने मस्तक का दान दे दिया । तब कहो, दान देने मे किसके हाथ बढकर है ?

हुवा न फेरूँ हूवसी,
भू मंडळ रे बीच ।
तरिया मँह हाडी जसी,
पुरखा मँही दधीच ।।६७।।

शब्दार्थ – फेरूँ=फिर हूवसी=होग, तरिया मँह=स्त्रिया मे, पुरखा मँही=पुरुषो मे ।

भावार्थ – कवि कहता है कि इस भू-मडल मे स्त्रियो मे हाडी के समान त्यागी और पुरुषो मे ऋषि दधीचि के सदृश त्यागवान् न तो कोई हुआ है, और न भविष्य मे होगा।

अलकार –असम।

चँद मंडळ कीरत गई,
काट्यो निज हथ कंध।
चंदमुखी हाडी तने,
देखण ऊगो चंद ॥९८॥

शब्दार्थ – कीरत=कीर्ति तने=तुम्हे चद=चन्द्रमा।

भावार्थ – कवि कहता है कि जब हाडी ने अपने हाथो से अपनी गर्दन धड से अलग कर दी, तब उसकी कीर्ति ठेठ चद्रमडल तक जा पहुँची। हे चन्द्रवदनी हाडी! इसीलिये तो तुम्हारे दर्शन करने के लिये यह चन्द्र उदित हुआ है।

सातूं सर सल्हा करे,
अब तो छोडाँ कार।
हाडी रा परसा चरण,
पूग सळूंबर पार ॥९९॥

शब्दार्थ – सातू=सातो, सर=समुद्र, सल्हा=सलाह, पूग=पहुँचकर।

भावार्थ – सातो समुद्र आपस मे इस प्रकार सलाह करने लगे कि अब तो अपन अपनी मर्यादा छोडें और सलूम्बर के उस पार पहुँच कर हम उस वीरागना हाडी के पवित्र चरणो को स्पर्श करें।

हाडी परसे हूलसूं,
गंग कहे मन चाव।
सीम सळूंवर मँह भलां,
भागीरथ ले जाव ॥१००॥

शब्दार्थ – हूलसूं=हर्षित होऊँ चाव=अभिलाषा, सीम=सीमा।

भावार्थ – गगा कहने लगी कि हे भगीरथ! हाडी के पवित्र चरणो को स्पर्श कर हर्षित होऊँ, यह मेरी अभिलाषा है। अत तुम मुझे सलूम्बर की सीमा मे ले चलो।

द्रोणगिर हाडी दहूँ,
कियो अनोखो काज।
उण दीधो सजीवणी,
इण सिर दीधो आज ॥१०१॥

शब्दार्थ – सरल है।

भावार्थ – कवि कहता है कि द्रोणागिरि और हाडो दोनों ने अनोखे काम किये हैं। उसने तो संजीवनी बूटी देकर लक्ष्मण को जीवन-दान दिया और इसने अपना मस्तक देकर हिन्दुत्व की रक्षा की।

हाडो धड़ सूनो हुओ,
मोती करे पुकार।
समदां म्हाने सीख दो,
संग जावां वण हार ॥१०२॥

शब्दार्थ – समदां=समुद्र, सीख=विदाई, वण=बनकर।

भावार्थ – कवि कहता है कि मस्तक दे देने के बाद जब हाडी का धड आभूषण-विहीन होगया तब उसे सूना देखकर मोती पुकार करने लगे – हे समुद्रो! हमें विदाई दो! हम उस वीर-पत्नी के संग, हार बनकर, स्वर्ग जाना चाहते है।

पुपप कहे इण सिर दियो,
जावां और न ठोड़।
बरसां हाडो ऊपरे,
रे माळी झट तोड़ ॥१०३॥

शब्दार्थ – पुपप=पुष्प, ठोड=स्थान, ऊपरे=ऊपर ।

भावार्थ – पुष्प कहने लगे कि हे माली ! हमें तू जल्दी तोड़ ! इस वीरांगना हाडी ने देश-हित में अपना मस्तक दिया है, अत हम इसी पर बरसेंगे, दूसरी जगह जाने के लिये हम तैयार नहीं हैं ।

सूर सुणो पंकज कहे,
वेग करो परभात ।
हाडी हंदा क्रतब नूं,
खुल देखण री खात ।।१०४।।

शब्दार्थ – सूर=सूर्य, वेग=शीघ्र, हंदा=का, क्रतब=कर्तव्य, खात=अभिलाषा ।

भावार्थ – कमल कहने लगे कि हे सूर्य ! सुनो, प्रभात जल्दी करो ! वीरांगना हाडी ने अपना मस्तक देकर जो अद्भुत कर्तव्य का पालन किया है, उसे खुलकर देखने की हमारी अभिलाषा है ।

मिणधर नूं कहवे मणी,
तें सिर राखी काय ।
में हाडी गळ होवतो,
बसतो सुरपुर जाय ।।१०५।।

शब्दार्थ – मिणधर=सर्प, काय=क्यो, व्यर्थ, गळ=गले मे ।

भावार्थ – मणिधारी सर्प की मणि पछताती हुई कहने लगी कि हे नागदेव ! आपने मुझे अपने मस्तक पर व्यर्थ ही रखा ! यदि मैं यहाँ न रहती तो आज हाडी के गले का आभूषण बनकर स्वर्ग मे जा बसती ।

चंद कहे अब आथमूं,
लूं विसराम निवास ।
चंदमुखी हाडी कियो,
पूरण क्रतब प्रकास ।।१०६।।

शब्दार्थ – आथमू=अस्त होऊँ, विसराम=विश्राम, क्रतब=कर्तव्य ।

भावार्थ – हाडी के अपूर्व बलिदान को देखकर चन्द्रमा कहने लगा कि अब मैं अस्त होकर अपने घर जाऊँ और विश्राम करूँ । क्योकि इस चन्द्रवदनी हाडी ने अपने कर्तव्य के प्रकाश को पूर्ण रूप से फैला दिया है ।

सूर उजाळे दीहड़ो,
चंद उजाळे रात ।
चंदमुखी हाडी क्रतव,
उजळी रात प्रभात ।।१०७।।

शब्दार्थ :- उजाळे=प्रकाशित करता है, दीहड़ो=दिन को।

भावार्थ :- कवि कहता है कि सूर्य दिन को प्रकाशित करता और चन्द्रमा रात को। लेकिन चन्द्रवदनी हाडी के कर्तव्य तो दिन और रात दोनों प्रकाशित हैं।

हाडी रे सिर वारता,
जदन सळूंबर जाय।
मोती संचत नहँ किया,
हंस रया पछताय ॥१०८॥

शब्दार्थ :- जदन=जिस दिन, हंस=पक्षी विशेष, प्राणी, रया=रहे हैं।

भावार्थ :- हंसों ने मोतियों का संचय नही किया, इस बात पर पछताते हुए वे कहते है कि जिस दिन हाडी ने अपना मस्तक दिया, उस दिन हम सलूम्बर पहुँचकर, यदि हमारे पास मोती होते तो, उस वीरांगना पर निछावर करते।

चारुमती कज सिर दियो,
सतव्रत लियो उबार।
अधकी गंग री धार सूं,
हाडी री खग धार ॥१०९॥

शब्दार्थ :– कज=निमित्त, सतव्रत=सतीत्व, अधकी=बढ़कर, खग=तलवार।

भावार्थ :– वीरांगना हाडी ने चारुमती के निमित्त अपना मस्तक दिया और उसके सतीत्व का उद्धार किया। कवि कहता है कि निःसन्देह हाडी के खड्ग की धार गंगा की पवित्र धारा से भी बढ़कर है।

यो रावत रे संग गियो,
धड़ रहियो गढ मांय।
रूपनगढ रण देखियो,
हाडी रे सिर जाय ॥११०॥

शब्दार्थ :– गियो=गया, रूपनगढ=किशनगढ़।

भावार्थ :– कवि हाडी के मस्तक की प्रशंसा में कहता है कि उसका मस्तक तो रावत के साथ रण-भूमि में पहुँचा और धड़ वहीं महलों में रहा। इस प्रकार उस मस्तक ने रूपनगर के युद्ध को देखा।

दीठा मंदर झूलणाँ,
धनो सळूंबर धीस।
अधको तो गळ झूलणो,
झूले धण रो सीस ॥१११॥

शब्दार्थ :- मदर=मन्दिर, भूलणाँ=भूले, अघको=बढकर, तो=तेरा, घण=पत्नी, हाडी।

भावार्थ :- हे सलूम्बर के स्वामी ! मन्दिरों में मैंने अनेक भूले देखे हैं, जिनपर देव-मूर्तियां भूलती हैं। किन्तु तुम्हारे गले का भूलना तो उनसे बढ़कर है। क्योकि उसमें तुम्हारी पत्नी-हाडी का मस्तक भूल रहा है।

पारवरी पिव नूं कहे,
श्रो कैलासन थाट।
होंदे सिर हाडी तणो,
राव गळे हिंगलाट ॥११२॥

शब्दार्थ :- थाट=ठाठ, तणो=का, हिंगलाट=भूला विशेष।

भावार्थ :- रावत के गले में हाडी के मस्तक को भूलता देख कर पार्वती शिव से कहने लगी — हे प्राणनाथ ! ऐसा ठाठ तो कैलाश में भी नही है। देखो, रावत के गले में (हिंगलाट) पर हाडी का मस्तक भूल रहा है।

श्रे फिर किण दिन श्ररथ रा,
तव चख दोय हजार।
हाडी रो सिर देखवा,
सेस पधारो बार ॥११३॥

शब्दार्थ – ये=ये, ग्ररथ रा=काम के, चख=चक्षु बार=बाहर।

भावार्थ – वीरागना हाडी के अद्‌भुत बलिदान को सुनकर नागिनी अपने पति शेषनाग से कहती है कि हे प्राणनाथ! हाडी के मस्तक को देखने के लिये बाहर तो जाओ! तुम्हारे ये दो हजार नेत्र फिर किस दिन काम आवेंगे?

सुक्कर पछतावे कहे,
इक हूँ सरे न काज।
दो चख होता देख तो,
हाडी रो सिर आज ॥११४॥

शब्दार्थ – सुक्कर=शुक्राचार्य सरे=बनता है चख=चक्षु।

भावार्थ – दैत्यो के गुरु शुक्राचार्य पछताते हुए कहने लगे कि मेरे तो एक ही चक्षु है, उससे कैसे काम चले? यदि मेरे दो चक्षु होते तो मैं भी आज वीरागना हाडी के मस्तक को पूरी तरह निहारता।

सुक्कर कहवे सेस नू,
थारे लोय हजार।
हाडी रो सिर देखवा,
इक चख देय उधार ॥११५॥

शब्दार्थ :- थारे=तुम्हारे, कहवे=कहता है, सेसनू=शेषनाग, देय=दो ।

भावार्थ :- शुक्राचार्य शेषनाग से कहने लगे – हे शेषनाग ! तुम्हारे दो हजार चक्षु हैं। उन चक्षुओं मे से एक चक्षु तो मुझे उधार दे दो, ताकि मैं वीरांगना हाडी के मस्तक को पूरी तरह देख सकूं ।

चकवा चकवी लाजिया,
धनो सळूंवर धीस ।
कटियां ही धर पोढ़िया,
सें जोड़े दुहु सीस ॥११६॥

शब्दार्थ :- धनो=धन्य है, सळूंवर धीस=सलूम्बर के स्वामी, पोढिया=सोये, [redacted] जोडे=जोडे सहित ।

भावार्थ :- हे सलूम्बर के स्वामी ! हाडी का और तुम्हारा (दोनो के) मस्तक कटकर भी जोडे के साथ ही धराशायी हुए हैं। तुम्हारे इस जोडे को देखकर रात्रि मे बिछुड़ने वाले चकवा-चकवी भी लजा गये हैं। इस जोड़े को धन्य है !

सीस मँडासो नहँ कियो,
सीस दियो जिण वार ।
पड़तो अंबर थांबियो,
हाडी रजवट भार ।।११७।।

शब्दार्थ :- मँडासो=भार उठाते समय मस्तक पर रखा जाने वाला वस्त्र का आधार, थाबियो=थामा, रजवट=क्षत्रियत्व ।

भावार्थ - कवि कहता है कि वीरांगना हाडी ने जब अपना मस्तक दिया तब उसने गिरते हुए क्षत्रियत्व के भार रूपी आकाश को झेलने के लिये अपने मस्तक पर 'मँडासा' नही रखा ।

ईस दिये उपमा असी,
आवे अन-ऊठीह ।
हाडी सिर ढोळे चमर,
डाढी रावत रीह ।।११८।।

शब्दार्थ :- ईस=शिव, असी=ऐसी, अन-ऊठीह=अनूठी, रावत रीह=रावत की ।

भावार्थ - रावत के गले मे हाडी का सिर झूल रहा था । उसे देखकर शिव ने अनूठी उपमा कही - हे पार्वती ! देखो, रावत की दाढी हाडी के मस्तक पर चँवर उडा रही है ।

खग दावे सिर वाढ़ियो,
हाडो बळ वळिहार ।
सेस कहे रण वाहती,
म्हां तक आती धार ।।११९।।

शब्दार्थ :- वाढ़ियो=काटा, वाहती=प्रहार करती, म्हां तक=मुझ तक, धार=तलवार की धार ।

भावार्थ :- हाडी के बल की प्रशंसा करते हुए शेषनाग कहता है कि उस वीरांगना ने अपने मस्तक को तलवार से दबाकर ही काट दिया; गर्दन पर उसे तलवार का प्रहार नहीं करना पड़ा। उसकी ताकत को धन्य है। अगर वह रण-भूमि में प्रहार करती तो उसके खड्ग की धार पृथ्वी को काटकर निःसन्देह मुझ तक आती ।

कं तरियां सोळा करे,
सिर दीधो जिण वार ।
दुनी अनोखो देखियो,
सतरमो सिणगार ।।१२०।।

शब्दार्थ :- कं=कई, दुनी=संसार, सतरमो=सत्रहवां ।

भावार्थ :- कवि कहता है कि कई स्त्रियाँ सोलह शृंगार करती हैं। लेकिन जब हाडी ने अपना मस्तक दिया तो दुनिया ने इस वीरांगना का सत्रहवाँ शृंगार देखा।

इण उतबंग अळगो कियो,
जद धड़ उमग्यो फेर।
हाडी हंदे कंचुवे,
कस तूटो उण वेर ॥१२१॥

शब्दार्थ - उतबग=उत्तमाग, सिर, अळगो=अलग, कंचुवे=कंचुकी, उण वेर=उस समय।

भावार्थ :- कवि हाडी के क्षत्रियत्व का वर्णन करते हुए कहता है कि जब उस वीरांगना ने अपने मस्तक को धड़ से अलग किया तब उसका वह धड़ हर्षित होकर फूला न समाया; यहाँ तक कि उसकी कंचुकी की कसें उस समय टूट गईं।

इण जद दीधो पीव नूं,
उणमण थाया ईस।
पारवती ने नहँ मिल्यो,
हाडी हंदो सीस ॥१२२॥

शब्दार्थ :- उणमण=उदास, थाया=हुए, ईस=शिव, हदो=का ।

भावार्थ :- कवि कहता है कि इस वीरांगना हाडी ने जब अपना मस्तक अपने पति को दे दिया तब शिव उदास हो गये । महादेव चाहते थे कि वह मस्तक पार्वती को मिले, जो उसे मिल नहीं सका ।

पाना नूं कूंपळ कहे,
वौ तरवर सूं दूर ।
हाडी हाथां सिर दियो,
देखां आवे नूर ।।१२३।।

शब्दार्थ :- पाना नूं=पत्तो को, कूंपळ=नये पत्ते, किसलय, नूर=रूप, सौन्दर्य ।

भावार्थ :- पत्तों में छिपी कूंपलें कहती हैं कि हे पत्तो ! तुम हमारे आगे से हट जाओ । हाडी ने आज अपने हाथों अपना मस्तक दिया है, उसे देखकर हम अधिक सुन्दर बनना चाहती हैं ।

सिर साथे अळगो कियो,
हाडी नवसर हार ।
कहे न टंकूं खूंटियां,
जाऊं सुरपुर लार ।।१२४।।

शब्दार्थ – अळगो=अलग, नवसर हार=नौ सरो वाला हार, टकूं=टंगूं, खूंटियां=खूंटियो पर, लार=साथ ।

भावार्थ – हाडी ने अपने नवसर हार को अपने मस्तक के साथ ही जब अलग कर दिया, तब वह कहने लगा – "हे वीरागना ! मैं यहां मर्त्यलोक मे खूंटियो पर टंगू गा नही; मैं तो तुम्हारे साथ स्वर्ग चलूंगा ।"

इक इक तो केही सुणी,
तूं दूणी बड़ भाग ।
थारा दहूँ सराहणा,
हाडी खाग तियाग ।।१२५।।

शब्दार्थ – केही=कितनी ही, दहूँ=दोनो, सराहणा=सराहना करने योग्य, तियाग=त्याग, खाग=खड्ग ।

भावार्थ – कवि कहता है कि हे वीरागना हाडी ! एक-एक गुनी सतियां तो मैंने कई सुनी है । किन्तु तुम्हारा भाग्य तो बडा है । तुम उनसे दुगुनी हो । खड्ग और त्याग दोनो तुम्हारे सराहनीय हैं ।

जनमी गमियो सूपड़ो,
दाई थाको भाळ ।
हाडी सिर धरियो जदन,
ठावो सोव्रण थाळ ।।१२६।।

शब्दार्थ :– सूपड़ो=सूप, भाळ=ढूंढकर, ठावो=ठीक ठिकाने, सोव्रण=सुवर्ण ।

भावार्थ .– कवि कहता है कि वीरांगना हाडी ने जिस दिन जन्म लिया उस दिन तो पुत्री-जन्म के कारण बजाने के लिये सूप भी नही मिला, यहां तक कि दाई भी उसे ढूँढ-ढूँढकर थक गई । लेकिन उस दिन तो सोने का थाल बिना ढूँढ़े ही ठीक ठिकाने मिल गया, जिस दिन उस वीर-पत्नी ने अपना मस्तक काटकर उसमें रखा ।

सरवर पंकज री सुणो,
तट लेजाव हिलोळ ।
हाडी रो देखां क्रतब,
जद आवे मन छोळ ।।१२७।।

शब्दार्थ :– हिलोळ=लहरें, छोळ=हर्ष ।

भावार्थ :- कमल कहते है - हे सरोवर ! सुन, तू अपनी लहरो को किनारे तक लेजा; उनके साथ तट पर पहुँचकर हम हाडी के अपूर्व कर्तव्य को देखेगे। तभी हमारा मन हर्षित होगा।

सिर दीधो जद ऊमंग्यो,
रावत कीधो जंग।
हाडी कर ऊँचो कियो,
नीचो सिर अवरंग ॥१२८॥

शब्दार्थ :- ऊमग्यो=हर्षित हुआ, जग=युद्ध, अवरग=औरगजेब।

भावार्थ - अपने पति को हाडी ने जब अपना मस्तक दिया तब उसने हर्षित होकर युद्ध किया। कवि कहता है कि इस प्रकार वीरागना ने मस्तक देने के लिये जब अपना हाथ ऊँचा किया तो औरंगजेब का मस्तक शर्मिन्दा होकर नीचे झुक गया।

सिर तो धरियो थाळ में,
धरती रगत रँगाय।
हाडी की उपमा कहूँ,
लालाँ दई बिछाय ॥१२६॥

शब्दार्थ :– रगत=रक्त, की=क्या, लालाँ=लाल रत्न ।

भावार्थ :– हाडी ने जब अपना मस्तक काटकर थाल में रखा तब पृथ्वी रक्त-रंजित हो गई। कवि कहता है कि उसकी उपमा मैं किससे दूं ? मानो, उस वीरागना ने पृथ्वी पर लाल रत्न बिछा दिये थे।

ध्रम राख्यो हिंदवाण रो,
जस राख्यौ संसार।
हाडी सिर राख्यौ नहीं,
कुळ राख्यौ बलिहार ॥१३०॥

शब्दार्थ :– ध्रम=धर्म, हिंदवाण=हिन्दुस्तान ।

भावार्थ :– कवि कहता है कि वीरांगना हाडी ने अपने प्राणों की परवाह नहीं की, उसने अपना मस्तक दे दिया और हिन्दुस्तान के धर्म की रक्षा की, संसार में यश को अमर किया एवं क्षत्रिय-कुल की मर्यादा बचाई। उसकी बलिहारी है।

ओ मुंहगो होतो नहीं,
धन होतो मम पास ।
लिखतो सुवरण आखरां,
हाडी रो इतिहास ।।१३१।।

शब्दार्थ – मुंहगो=मँहगा, आखरां=अक्षरों मे ।

भावार्थ – कवि का कथन है कि यदि सुवर्ण मँहगा नही होता अथवा मेरे पास धन होता तो मैं वीरांगना हाडी का इतिहास स्वर्णाक्षरों मे ही लिखता ।

# अनुक्रमणिका